सामयिकी

फ़ौजी दमन से आहत कश्मीर

शोपियाँ प्रकरण: एक राष्ट्रीयता का कुचला जाता सम्मान

● प्रेमप्रकाश

अभी वही है निज़ामे कोहना, अभी तो जुल्मो-सितम वही है
अभी मैं किस तरह मुस्कराऊँ अभी तो रंजो-अलम वही है

अभी तो जम्हूरियत के साये में आमरीयत पनप रही है
हवस के हाथों में अब भी क़ानून का पुराना क़लम वही है

मैं कैसे मानूँ कि इन खुदाओं की बन्दगी का तिलिस्म टूटा
अभी वही पीरे-मैकदा है अभी तो शेखो-हरम वही है
– ख़लीलुर्रहमान आज़मी

अपने आपको सबसे बड़ा लोकतन्त्र कहने वाला भारतीय शासक वर्ग की धर्म निरपेक्षता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की लफ़्फ़ाज़ी रोज़-ब-रोज़ जनता के सामने खुलकर आती है। भ्रष्टाचारी, भोगी-विलासी भारतीय शासक वर्ग अपने हितों के लिए किस तरह से मानवीयता की धज्जियाँ उड़ा रहा है यह छिपा नहीं है। देश के विभिन्न हिस्सों में जनान्दोलनों को कुचलने के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है। पूर्वोत्तर राज्यों और कश्मीर को तो उसने बर्बरतम और निर्ममतम फ़ौजी दमन के बूटों तले कुचल रखा है। शोपियाँ में दो महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार एवं उसके बाद हत्या और उसके बाद शासन एवं सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा मामले की लीपापोती ने जनविरोधी राज्यसत्ता के चरित्र को और उजागर किया। साथ ही साथ कश्मीरी जनता के आक्रोश एवं घृणा को और अधिक मुखर रूप दिया।

घटना के प्रमाणों एवं तर्कों के आइने में शासन का चरित्र

विगत 29 मई को 17 वर्षीय आशिया जान और उसकी 22 वर्षीय भाभी नीलोफ़र को सामूहिक बलात्कार के बाद हत्या कर दी गयी। 22 वर्षीय नीलोफ़र 2 माह से गर्भवती थी। 29 मई को शाम 5 बजे ये दोनों घर से बाहर निकलीं और जब आठ बजे तक वापस नहीं आयीं तो घरवालों ने उन्हें ढूँढ़ना शुरू किया। पड़ोसियों द्वारा नीलोफ़र के पति शकील को बताया गया कि जब वे निकलीं तो उसी समय पेट्रोलिंग पार्टी उधर से गुज़री थी। सारी रात छानबीन के बाद सुबह 5 बजे नीलोफ़र का शव रम्बीआरा नाला के पास मिला जो सी.आर.पी.एफ़. कैम्प से कुछ ही दूरी पर था और आशिया के भाई जहूर ने शव को उठाया उसने बताया कि नीलोफ़र का शव पानी में था और उसके कपड़े फटे थे तथा गले के पास चोट के निशान थे जबकि आशिया के शव पर अधोवस्त्र नहीं थे और उसने उसे अपनी शर्ट से ढँका। पाशविकता की इन्तिहा यह थी कि गर्भवती नीलोफ़र को भी नहीं बख़्शा गया। शोपियाँ अस्पताल में तीन डॉक्टरों और मृतक महिलाओं के सम्बन्धियों के सामने पोस्टमार्टम हुआ और डॉक्टरों ने बलात्कार की बात की पुष्टि की। परन्तु बाद में एक हवलदार ने आकर डॉक्टरों से रिपोर्ट को नकारात्मक बनाने के लिए कहा। आशिया का भाई जहूर यह सुनकर अवाक रह गया और वह फ़ौरन बाहर आकर चिल्लाने लगा। बाहर खड़ी भीड़ और सैकड़ों बच्चे व महिलाएँ विरोध में नारे लगाने लगे और देखते ही देखते घटना ने एक जन विरोध का रूप ले लिया।

सैकड़ों महिलाओं बच्चों और नागरिकों के व्यापक विरोध के दबाव में पुलवामा के डॉक्टरों ने दूसरी बार पोस्टमार्टम किया जिसमें बलात्कार की पुष्टि हुई लेकिन पोस्टमार्टम रिपोर्ट हिंसा के निशान एवं चोट के चिन्हों को इन्कार करती है। ज्ञात है कि आशिया के भाई ने शरीर पर चोट के निशान की पुष्टि की थी। पोस्टमार्टम के समय एस.पी. जावेद इकबाल मट्टो भी मौजूद थे। सी.एम.ओ. पुलवामा के साथ पोस्टमार्टम टीम में शामिल महिला डॉक्टर जब बाहर आयी तो परिजनों ने उसे घेर लिया और सच्चाई बताने के लिए क़ुरान की कसम दिलायी। महिला डॉक्टर बुरी तरह से टूट गयी और उसने बताया कि दोनों के साथ कम से कम 15-18 व्यक्तियों ने बलात्कार किया। ज्ञात हो कि मामले के जनान्दोलन का रुख लेते ही साक्ष्यों एवं सबूतों को मिटाने की कोशिश शुरू हो गयी और सत्ता प्रतिष्ठान इसमें संलिप्त हो गया।

पुलिस अधिकारी मुहम्मद यासीन जो घटना की रात परिवार के साथ खोजी टीम में था ने बताया कि प्रवासी चरवाहे उस रात इलाक़े में थे परन्तु सुबह तक वे रहस्यमय तरीक़े से ग़ायब हो गये। यह अनायास ही नहीं हुआ होगा ऐसा लगता है कि वे घटना के गवाह थे और उन्हें बलात् जगह छोड़ने को कहा गया होगा। एस.पी. जावेद के तबादले एवं निलम्बन तक की नौटंकी और मामले के प्रति इरादतन लापरवाही यह दर्शाती है कि यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो रहा है। दूसरी तरफ़ शुरुआत में पुलिस ने सी.आर.पी.सी. की धारा 174 के तहत

रिपोर्ट लिखी थी जिसके अनुसार पुलिस को आत्महत्या या हत्या के मामले की जाँच करनी होती है और बलात्कार व हत्या का मामला दर्ज नहीं किया गया। ज़ाहिर है, सत्ता के फ़ौजी दरिन्दों को पुलिस नहीं बचाएगी तो कौन बचाएगा?

कश्मीरी जनता के जम्हूरियत के प्रतिनिधि का दम्भ भरनेवाले मुख्यमन्त्री उमर अब्दुल्ला ने बेशर्मी की हद करते हुए यह बयान दिया कि प्राथमिक प्रमाण न तो बलात्कार और न ही हत्या की पुष्टि करते हैं। उमर साहब! जब परिवार के लोग चिल्ला-चिल्लाकर शरीर पर घाव के निशान, गर्दन पर गला घोंटने के निशान एवं खरोंच बता रहे हैं और घटना स्थल से शव को उठाने वाले आशिया के भाई जहूर बता रहे थे कि नीलोफर और आशिया और आशिया को उन्होंने अपनी शर्ट से ढँका तो इससे अधिक आपको कौनसा प्रमाण चाहिए? पोस्टमार्टम में शामिल महिला डॉक्टर ने अपने बयान में 15 से 18 लोगों द्वारा बलात्कार की बात स्वीकार की तो एफ़.आई.आर के लिए इससे अधिक कौन-से प्रमाण चाहिए थे? सच तो यह है कि कश्मीरी जनता की इज़्ज़त-आबरू और स्वाभिमान से उमर अब्दुल्ला जैसों का कोई वास्ता नहीं है। ऐसे लोग तो सत्ता और फ़ौज के इस खूनी खेल में शामिल व्यवस्था के अंगरक्षक हैं।

बार एशोसिएशन कश्मीर ने जनहित याचिका (पी.आई.एल) दाखिलकर धारा 376 (सामूहिक बलात्कार), धारा 302 (हत्या) के तहत मुक़दमा चलाने की माँग की। मामले की जाँच के लिए बार एसोसिशन नें 'फ़ैक्ट फ़ाइण्डिंग कमेटी' बनायी जो मामले के पहलुओं पर स्वतन्त्र जाँच करेगी। जन दबाव एवं पूरे कश्मीर में घटना के व्यापक रूप धारण करने के बाद मामले से जुड़े सैम्पल फोरेंसिक लैब को भेजे गए व सेवानिवृत्त जज मुजफ़्फर जन की अध्यक्षता में मामले की जाँच के लिए आयोग का गठन किया गया। अधिकारियों के बयान एवं सत्ता की जाँच रिपोर्ट तमाम ऐसे अनुत्तरित प्रश्न छोड़ती हैं जिससे किसी भी व्यक्ति के लिए इस मामले को लेकर शासन के रुख़ को समझना आसान होगा।

एक तरफ़ फोरेंसिक लैब की रिपोर्ट है जो सामूहिक बलात्कार की पुष्टि तो करती है परन्तु हत्या के कारणों के बारे में मौन है, तो दूसरी तरफ़ स्वास्थ्य अधिकारियों ने मामले की जो रिपोर्ट डी.जी.पी को सौंपी उसमें दोनों की मृत्यु डूबने या ज़हर खाने से बतायी गयी है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि 17 वर्षीय आशिया की मौत अत्यधिक यौन चोट एवं खून स्राव के कारण हुई जबकि गर्भवती नीलोफ़र की मौत का कारण मानसिक सदमा था। मामले की स्वतन्त्र छानबीन कर रही बार एसोसिएशन की फ़ैक्ट फ़ाइण्डिंग कमेटी की रिपोर्ट बताती है कि दोनों को जबरन उठाया गया, सामूहिक बलात्कार हुआ और हत्या की गयी या ऐसा भी हो सकता है कि हत्या के बाद सामूहिक बलात्कार किया गया हो। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि एस.पी. शोपियाँ ने डॉक्टरों पर रिपोर्ट बदलने के लिए दबाव बनाया। एस.पी. शोपियाँ, एस.एच.ओ. शफीक अहमद व अस्पताल के डॉक्टर अपने कार्यों के निष्पादन में असफल रहे व साक्ष्यों के मिटाने के दोषी हैं।

जन आयोग के समक्ष एस.पी. ने जो बयान दिया उसमें उसने स्वीकारा कि जब सुबह 5:30 बजे उसे घटना की सूचना मिली तो वह अपने घर पर ही रहा। उसने अपराध की जगह पर न तो कोई गार्ड नियुक्त किया और न ही साक्ष्यों को जुटाने में किसी भूमिका का निर्वाह किया। एस.पी. जावेद मट्टो ने स्वीकार किया कि दोनों महिलाओं के शरीर पर हिंसा के निशान थे जबकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट हिंसा के किसी चिन्ह के होने से इन्कार करती है। ज़ाहिर है कि दोषियों को बचाने का हरसम्भव प्रयास किया जा रहा था। दूसरी तरफ़ जन आयोग ने फ़ोरेंसिक लैब को रिपोर्ट भेजने में देरी करने का आरोप लगाया। क्या कारण था कि 2 जून को लैब की रिपोर्ट आने के बाद लैब ने 5 दिन तक रिपोर्ट को दबाकर रखा? मामला साफ़ है कि फ़ोरेंसिक लैब भी सत्ता प्रभाव से अछूता नहीं है और रिपोर्ट में देरी को मामले को दबाने की प्रक्रिया के अंग के रूप में देखा जा सकता है। जन आयोग की रिपोर्ट ने, नागरिक प्रशासन की लापरवाही, पुलिस और डाक्टरों को मामले को गलत तरीक़े से निपटारा, मामले से सम्बन्धित वृहद सबूतों को नष्ट करने का आरोप लगाया है।

मुजफ्फर जन आयोग की रिपोर्ट के बाद एस.पी. जावेद इकबाल, डी.एस.पी. रोहित, स्टेशन हाउस अफ़सर-शफीक अहमद, एस.आई.-गाजी अब्दुल करीम व फ़ोरेंसिक लैब के क़ानूनी प्रकोष्ठ के प्रमुख जावेद इक़बाल हफ़ीज़ को बर्ख़ास्त कर दिया गया।

इस प्रकरण के तुरन्त बाद से ही कश्मीर में चुनावी सियासत करने वाले सारे खिलाड़ियों को एक मुद्दा मिल गया। पी.डी.पी. की महबूबा मुफ़्ती सईद ने उमर अब्दुल्ला सरकार पर इस पूरे प्रकरण में दोषियों को बचाने का आरोप लगाया और जनान्दोलन की धमकी दी। कश्मीर भर में इस मामले को लेकर जनता में जो भयंकर आक्रोश था उसके चूल्हे पर रोटी सेंकने के लिए सारे चुनावी मदारी अपने-अपने तवे लेकर दौड़े। लेकिन कश्मीर की जनता यह भूली नहीं है कि सरकार चाहे किसी की भी रही हो, कश्मीर की जनता को ऐसे ही अमानवीय दमन और शोषण का सामना करना पड़ा है। कश्मीर की जनता का आक्रोश लावे की भाँति सड़कों पर बह रहा है। घटना की सूचना फैलते ही पूरी कश्मीर घाटी में स्वत:स्फूर्त विरोध शुरू हो गया। न्याय, आत्मनिर्णय का अधिकार, सेना हटाने की माँग के साथ लोग नारे लगाने लगे। पुलिस को आँसू गैस छोड़ने पड़े तथा शोपियाँ में 40 से अधिक लोग घायल हो गए। पुलवामा में हुए प्रदर्शन में 12 लोग व सोपोर में 25 लोग घायल हो गए। श्रीनगर में जनता और पुलिस में हुए झड़प में 80 लोग घायल हुए। पुलिस फ़ायरिंग में दो लोगों को गोलियाँ लगी हैं जिनकी हालत गम्भीर है। 22 वर्षीय निसार अहमद की आँसू गैस का गोला सिर पर लगने से मौत हो गयी। पुलिस एवं अर्धसैनिक बलों द्वारा पूरे कश्मीर में व्यापक स्तर पर सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार किया गया और प्रताड़ित किया जा रहा है। 11 जून को सरकारी अर्द्धसरकारी कार्यालय के कर्मचारी व स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के छात्रों ने घटना को लेकर हुए

विरोध प्रदर्शन में भाग लिया। घाटी में इस घटना में हुए विरोध में 5 लोग मारे गए हैं और 400 से अधिक लोग घायल हुए। इसके बाद सी.बी.आई. ने अपनी जाँच के बाद कहा कि यह मामला हत्या या बलात्कार का नहीं है। आशिया और नीलोफ़र की मौत डूबने से हुई है। सी.बी.आई. ने सभी आरोपियों को दोषमुक्त किया और सुरक्षा बलों को पूरी तरह से निर्दोष ठहराया। इसी बात की उम्मीद भी थी। कश्मीरी जनता के दमन का मसला हो तो सरकार का शुरू से एक ही मन्त्र रहा है - 'किसी भी क़ीमत पर न्याय नहीं!' कुछ दिनों के ही भीतर सारे गवाहों को डरा-धमकाकर अपने बयान बदलने पर मजबूर कर दिया गया। और पिछले सभी जघन्य अपराध के मामलों की ही तरह इस मामले को भी रफा-दफा करने की कोशिश की जा रही है। लेकिन ज़ाहिर है कि कश्मीरी जनता की नफ़रत और भारतीय सत्ता के प्रति घृणा ऐसी हर घटना के साथ बढ़ रही है। प्रतिरोध का कोई और विकल्प न होने पर इस दमन के ख़िलाफ़ आक्रोशित जनता का एक हिस्सा धार्मिक कट्टरपन्थी आतंकवाद की ओर भी जा रहा है। समझा जा सकता है कि जिसकी माँ, बहन, बच्चों की हत्या या बलात्कार किया गया हो वह आतंकवादी रास्ते की तार्किकता के बारे में नहीं सोचेगा। वह पहले बदले के बारे में सोचेगा। ऐसे में उसे जो विकल्प सहज और सुलभ नज़र आएगा, वह उसे अपनाएगा।

यह विरोध, यह गुस्सा अनायास ही नहीं है और न ही यह एक दिन में उपजा है। इसके कारण कश्मीरी जनता के दशकों पुराने दमन और उनके विरुद्ध सत्ता के अन्यायपूर्ण रवैये में निहित हैं। इस इतिहास पर चर्चा अलग से एक लेख की माँग करती है। लेकिन अभी कुछ बातें समझने के लिए इतिहास की जानकारी नहीं बल्कि सामान्य बोध (कॉमन सेंस) की ज़रूरत है। एक तरफ़ बन्दूक़ों से लैस सुरक्षा बल ओर दूसरी तरफ़ विरोध में शामिल औरतें और बच्चे, छात्र और नागरिक जो यह जानते हैं कि किसी भी वक़्त पुलिस एवं सैनिक बल उन पर गोलियाँ चला सकते हैं। क्या इसे महज अलगाववाद और आतंकवाद का नाम दिया जा सकता है? क्या सारी कश्मीरी जनता आतंकवादी हो गयी है? क्या इसे महज धर्मान्ध इस्लाम का चोगा पहनाया जा सकता है? अगर नहीं, तो कश्मीरी जनता ऐसी क्यों है? और अगर पूरी कश्मीरी जनता वाक़ई आतंकवादी हो गयी है, तो सोचना होगा कि क्या कारण है? एक पूरी क़ौम आतंकवादी हो जाए तो सोचने की बात है कि सामान्य स्त्री, पुरुष, बच्चे, नौजवान, बुजुर्ग जो बस एक सम्मानजनक जीवन चाहते हैं, बन्दूक़ उठाकर सत्ता के ख़िलाफ़ क्यों उठ खड़े होते हैं?

फ़ौजी दमन, क़ानून और वर्तमान जीवन स्थितियाँ

कश्मीर में यह पहली बार नहीं हुआ है। फ़ौजी दमन की घटनाएँ, सामूहिक बलात्कार फ़र्जी एनकाउण्टर और नागरिक हत्याएँ - यह सब कश्मीरी जनता एक लम्बे समय से सहन कर रही है। लेकिन फ़ौजी अत्याचार का यह जुआ अब असहनीय हो गया है और यही वजह है कि विरोध का स्वर दिन प्रतिदिन हिंसक हो रहा है। जब ज़िन्दगी मौत से भी अधिक बोझिल हो जाती है तो सत्ता का ख़ौफ़ और संगीनें जनता की आवाज़ को नहीं दबा सकती। शासन के प्रति विरोध, कश्मीरी अवाम का आक्रोश, एक लम्बे समय में दमन की, शोषण की और गुलामी की ज़िन्दगी से छुटकारा पाने की तड़प है। दमन ने प्रतिरोध को हमेशा जन्म दिया है।

इस दमन के पैमाने को कुछ आँकड़ों से समझा जा सकता है। जनवरी 1989 से 30 जून, 2009 तक कश्मीर घाटी में सैनिक, अर्धसैनिक बलों व पुलिस ने हिंसा व दमन के अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किये हैं। 1989 से अब तक कश्मीर में 92,870 हत्यायें हुई हैं और ये हत्याएँ आतंकवाद के नाम पर हुई मासूमों की हत्याएँ हैं। पुलिस हिरासत मे हुई हत्याओं की संख्या अब तक 6959 है। 1989 से अब तक घाटी में 1,16,267 नागरिकों को गिरफ़्तार किया गया है। 1,05,751 रिहायशी ढाँचे नष्ट किये जा चुके हैं। 22,692 औरतें विधवा हो चुकी है। 1989 से आज तक 1,07,256 बच्चे अनाथ हो गए है। ये बच्चे किसी अलक़ायदा और हिजबुल के साथ जाते हैं तो इसके लिए भारतीय शासक वर्ग और फ़ौजी दमन जिम्मेवार है। सामूहिक बलात्कार के 9,876 मामले हुए। इस बेइन्तिहा जुल्म ने कश्मीरी जनता की ज़िन्दगी को मौत से भी बदतर बना दिया है। फ़ौजी शासन के लागू होने के बाद से कश्मीर में 70,000 लोग लापता हो चुके हैं। जून 2009 महीने में कुल 28 लोग मारे गए, 1,061 मामले पुलिस टॉर्चर एवं घायलों के आये, 59 नागरिक गिरफ़्तार किये गए। 46 संरचनाएँ नष्ट हुई और औरतों के सामूहिक बलात्कार व प्रताड़ना के 10 मामले सामने आये। ऐसा प्रताड़ित समाज अगर भारतीय राज्यसत्ता का विरोधी न हो तो क्या करे? वह अपनी आज़ादी की माँग न करे तो क्या करे? वह भारतीय फ़ौजी छावनियों को क्यों न उड़ा दे?

कश्मीरी जनता के आन्दोलन को दबाने के लिए जनविरोधी क़ानून बनाये गए हैं। 'जम्मू कश्मीर नागरिक सुरक्षा एक्ट-1978' एक ऐसा की क़ानून है। इस क़ानून द्वारा कश्मीरी नागरिकों को सुरक्षा के बजाय प्रताड़ना ही अधिक मिलती है। इस क़ानून की जड़ें ब्रिट्रिश हुकूमत द्वारा पारित 'भारत रक्षा अधिनियम' में हैं जिसे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लोगों और राष्ट्रीय नेताओं को दण्डित करने एवं दमन करने के उद्देश्य से बनाया गया था। महात्मा गाँधी और अनेक नेताओं ने इसे काले क़ानून की संज्ञा दी थी। पब्लिक सेफ्टी एक्ट-1987 (1987 एवं 1990 में संशोधित) राज्य को यह अधिकार देता है कि वह किसी भी व्यक्ति को बिना किसी ट्रायल के दो वर्ष तक बन्धक बना सकता है केवल यह कहते हुए कि यह क़ानून और व्यवस्था के लिए ज़रूरी है, पर ऐसा क्यों? इसको बताने की ज़रूरत नहीं महसूस करता है। क़ानूनी जानकारों का मानना है कि यह क़ानून अपनी मौजूदा स्वरूप में ब्रिट्रिश काल के 'डिफ़ेंस ऑफ इण्डिया एक्ट' से भी ज़्यादा जनविरोधी है क्योंकि यह न्याय के अधिकार से लोगों को वंचित रखता है। यह क़ानून के समक्ष समानता के अधिकार का (गिरफ़्तारी के 24 घंटे के अन्दर

आरोपी के मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करने के अधिकार(फेयर ट्रायल इन पब्लिक, एक्सेस टू काउंसल, क्रॉस एक्सामिनेशन ऑफ़ दि विटनेस, अपील अगेंस्ट कनविक्शन आदि क़ानूनी अधिकारों का निषेध करता है। 'ह्यूमन राइट्स वाच' के अनुसार शबीर अहमद शाह जो कि शान्तिपूर्ण तरीक़े से कश्मीरी लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए अभियान चला रहे हैं को अपने जीवन के 22 वर्ष जेल में काटने पड़े।

1990 में भारत सरकार ने क़ानून और सुरक्षा बनाये रखने के लिए सुरक्षा बलों को विशेष अधिकार देने के नाम पर 'सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम' लागू कर दिया। ग़ौरतलब है कि यह क़ानून सर्वप्रथम 1958 मे पूर्वोत्तर भारत में लागू हुआ था। और तबसे आजतक यह पूर्वोत्तर भारत और 1990 से कश्मीर में जनदमन के नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। यह क़ानून लेह और कारगिल को छोड़कर सम्पूर्ण कश्मीर पर लागू है। यह क़ानून सशस्त्र सेना के किसी भी कमीशन अधिकारी, नॉन कमीशन या समतुल्य अधिकारी को यह अधिकार देता है कि यदि उस अधिकारी के विचार से क़ानून और व्यवस्था बनाये रखने कि लिए ज़रूरी है तो वह चेतावनी देकर किसी पर गोली चला सकता है, बलप्रयोग कर सकता है चाहे उससे उस व्यक्ति की मौत भी हो जाये तो कोई फ़र्क़ नहीं। ऐसे अधिकार का सेना ने कश्मीरी जनता की अस्मिता को रौंदने के लिए खूब इस्तेमाल किया और कश्मीरी जनता के भावनाओं और ज़िन्दगी से खिलवाड़ किया। यह क़ानून लुटेरों के हाथों में यह अधिकार देता है कि वह लोगों के घरों की तलाशी ले (क़ातिलों और ख़ूनियों को यह अधिकार देता है कि यह लोगों की भावनाओं, सम्पत्ति और आबरू को लूटे और विरोध करने पर हत्या कर दे और कहे कि आप राष्ट्रद्रोही हैं।

पूरे देश की तरह कश्मीर में भी मेहनतकश अवाम एवं मज़दूरों की जीवन स्थितियाँ बदतर हैं। खेती में उत्पादन में कमी आयी है। पश्मीना ऊन एवं तमाम ऐसे ही हैण्डीक्राफ्ट उद्योग तबाह हो गये हैं। अशान्ति के कारण पर्यटन जो कश्मीर की जीविका का प्रमुख अंग था लगभग ख़त्म हो चुका है। मेहनतकश अवाम का जीवन और दुरूह हो गया है। 1990 से अब तक लगभग साढ़े पाँच लाख लोगों ने हड़तालों में भाग लिया। 1990 में अध्यापकों और कर्मचारियों ने 72 दिन लम्बी हड़ताल की जिसमें 24,000 कर्मचारियों को सेवा से रोक दिया गया। इस हड़ताल में दैनिक मज़दूरी पाले वाले मज़दूर व छात्र भी शामिल थे। राज्य मशीनरी के ख़िलाफ़ आये दिन मेहनतकशों की हड़तालें एवं नागरिक विरोध आम हो गये हैं। वैश्विक पूँजी की मार एवं प्रशासन की दमनपूर्ण नीति के कारण कश्मीरी अवाम का जीवन कठिन होता जा रहा है। ज़ाहिर है कि कश्मीरी जनता को हर उस दमन का सामना तो करना पड़ता ही है जिसका सामना पूरे देश की आम मेहनतकश जनता को करना पड़ता है, लेकिन साथ ही उसे राष्ट्रीयता के दमन का सामना भी करना पड़ता है। कश्मीरी राष्ट्रीयता का दशकों से चला आ रहा यह दमन भारतीय पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है और इसके कारण इतिहास में निहित हैं। लेकिन यह अमानवीय दमन वही पैदा कर सकता जो इसने कश्मीर में पैदा किया है। इस दमन के बाद कश्मीरी जनता से आज्ञाकारी बर्ताव की उम्मीद उसमें दासवृत्ति पैदा करने की उम्मीद है। ऐसा न कभी हुआ है और न कभी होगा। जब तक नग्न सैन्य दमन के बूटों तले कश्मीरी जनता के स्वाभिमान को रौंदने की कोशिश जारी रहेगी, तब तक कश्मीरी जनता का प्रतिरोध किसी कारगर विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी में धार्मिक कट्टरपन्थी आतंकवाद का पनपना जारी रहेगा। यह अपराध भारतीय पूँजीवाद का है। एक जनपक्षधर व्यवस्था ही दशकों से चले आ रहे इस खूनी विवाद का शान्तिपूर्ण और उचित निपटारा जनवाद और राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार के आधार पर कर सकती है।

तीन टके का उपन्यास

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

इस उपन्यास में ब्रेष्ट पतनशील पूँजीवादी समाज में व्यापारिक पूँजीपति वर्ग की घोर अनैतिकता, लालच और उसके "राष्ट्रवाद" की असलियत को एकदम नंगे तौर पर उजागर कर देते हैं। ब्रेष्ट बहुत ही दिलचस्प और यर्थाथवादी तरीक़े से पूँजीवादी राष्ट्रवाद, पूँजीवादी नैतिकता, पूँजीवादी प्रेम, पूँजीवादी रिश्तों, पूँजीवादी संवेदनाओं, पूँजीवादी न्याय और पूँजीवादी मीडिया की वास्तविकता को सामने लाते हैं।

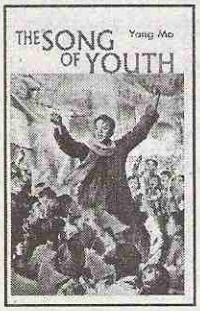

The Song of Youth
और
तरुणाई का तराना

"तरुणाई का तराना" कोई काव्यग्रन्थ नहीं, बल्कि चीन की क्रान्तिकारी लेखिका यांग मो की एक ऐसी औपन्यासिक कृति है जिसमें रचनाकार ने सड़कर बजाबजा रहे अर्द्धसामन्ती-अर्द्ध-औपनिवेशिक समाज की मुक्ति के लिए कर देते, अदम्य उत्साह और अकूत बलिदान का संकल्प के लिए संघर्ष का रहे नौजवान छात्र-छात्राओं की शौर्यगाथा का अत्यंत सजीव, प्रेरणादायी और रोचक वर्णन किया है।

प्राप्त करने के लिए संपर्क करें:
जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020